"हमने ख़ुद क़ुरआन को उतारा है और हम ख़ुद इसके रक्षक हैं।"
(क़ुरआन, सूरह हजर, आयत 9)

समाज सुधार प्रकाशण श्रंखला-20

युनाइटेड हिन्दू फ़्रन्ट की तरफ़ से क़ुरआन की 24 आयतों पर आपत्ति और हमारी तरफ़ से प्रत्येक आयत का संक्षिप्त उत्तर

मौलाना अरशद मदनी
अध्यक्ष, जमीअत उलमा-ए-हिन्द

प्रकाशक
सूचना एवं प्रसारण विभाग, जमियत उलमा-ए-हिन्द
1-बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग दिल्ली

بسم الله الرحمن الرحيم

प्रारम्भ करता हूँ मैं अल्लाह के नाम से जो असीम कृपालु महादयालु है।

युनाइटेड हिन्दू फ्रन्ट की *तरफ* से

क़ुरआन की 24 आयतों पर आपत्ति

और हमारी *तरफ* से

प्रत्येक आयत का संक्षिप्त उत्तर

आदरणीय जय भगवान गोयल जी, आदाब

कुरआन की 24 आयतों के बारे में आपका पत्र मुझे मिला जिसका अभिप्राय यह है कि इन आयतों को कुरआन से निकाल दिया जाए क्योंकि ये आयतें अन्य धर्म के लोगों को मारने, काटने, लूटने, जिहाद (युद्ध) करने, ज़िंदा जला देने या ज़बरदस्ती धर्म परिवर्तन कराने का आदेश देती हैं।

आदरणीय गोयल जी!

मैं आपको बहुत बलपूर्वक यह बात बताता हूँ कि आपको जिसने भी यह बताया है वह कुरआन की शिक्षा से अन्जान है और न वह कुरआन को जानता है, न कुरआन की व्याख्या को जानता है और न वह अरबी भाषा और उसके व्याकरण को जानता है इसलिए उसका अर्थ गलत लिखता है।

इसी कारण से जहाँ कुरआन में काफ़िर (अल्लाह और रसूल का इनकार करने वाला) या मुशरिक (अनेकेश्वरवादी) से जिहाद या किताल और लड़ाई का वर्णन आया है आपने इसका अर्थ प्रत्येक स्थान पर बिना विचार के सभी अनेकेश्वरवादियों के लिए किया है यह आपकी सबसे

बड़ी मूलभूत गलती और नादानी है बल्कि में यह समझता हूँ कि यही वह मूलभूत गलती है जिस पर आपके सभी विरोध टिके हुए हैं। हालांकि यदि आप वहीं दोचार आयत पहले से विचार करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि क़िताल (वध) या अज़ाब (यातना) का यह आदेश किसी विशेष पाप से जुड़ा हुआ है, साधारण लोगों के बारे में नहीं है, पूरे विषय को छोड़कर एक आयत के अंश को उठाकर उस पर आपत्ति करना, मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि यह कुरआन की व्याख्या और अरबी न जानने के कारण है या जानबूझ कर लोगों को कुरआन और इस्लाम से सन्देहशील पैदा करने के लिए है? इसलिए मैंने जगह-जगह अपने उत्तर में आपकी इस गलती को स्पष्ट किया है ताकि आप अगर चाहें तो सच्चाई से परिचित हो जाएं।

(1) ''फिर जब रमज़ान का महिना पूर्ण हो जाए तो मूर्तियों की पूजा करने वालों को जहाँ कहीं मिलें उनका वध करो, और पकड़ो और उन्हें घेरो और हर घात के स्थान पर उनकी ताक (प्रतीक्षा) में बैठो।''

(सूरह नं. 9, आयत नं. 5)

यह अर्थ (फिर जब रमज़ान का महीना पूर्ण हो जाए) बिल्कुल निराधार है। अरबी व्याकरण और कुरआन के आदेश एवं नियमों से दूर है, इसका अर्थ यह है कि अनुवादक अरबी भाषा का कुछ ज्ञान नहीं रखता था इसलिए आप कुरआन की आयतों का विरोध कर रहे हैं। और अगर आप इन आयतों की सही व्याख्या को जानते तो कदापि विरोध न करते।

दूसरी बात यह है कि यहाँ समस्त मूर्तिपूजक से आशय नहीं है बल्कि उसी मूर्तिपूजक से आशय है जिनका वर्णन दो-तीन आयतों में आ चुका है। विशेषकर जिनसे 6 हिज्री में हज़रत मुहम्मद स.अ.व. के मक्का से पलायन के वर्ष से शुरू होने वाले इस्लामी वर्ष में हुदेबिया के स्थान पर अल्लाह के रसूल मुहम्मद स.अ.व. और 1400 मुसलमानों ने प्रत्येक

रूप से शांति के लिए नीचे उतकर कर 10 साल के लिए मक्के के मूर्तिपूजकों से एक संधि की थी, उस संधि की कुछ शर्तें इस प्रकार थीं:

1. हम इस साल आपको मक्का में इबादत करने यानि ''उमरा'' के लिए नहीं आने देंगे आप लोग वापस जाएं। अगले साल सिर्फ़ तीन दिन के लिए आने की अनुमति होगी।
2. कोई हथियार मक्का में लेकर नहीं आएंगे।
3-. अगर हमारा कोई आदमी आपके यहाँ चला गया तो उसको सकुशल वापस करना होगा। यदि आपका कोई व्यक्ति हमारे पास भाग आया तो हम उसे वापस नहीं करेंगे।
4. जो क़बीला (जनजाति) चाहे आपके साथ हो जाए और जो चाहे हमारे साथ हो जाए अगर वह दोनो आपस में लड़ेंगे तो हम किसी की सहायता नहीं करेंगे।

लेकिन मक्का के वे लोग जो इस्लाम नहीं लाए थे उन्होने इस संधि का उल्लंघन किया और दो साल ही में इस संधि का तोड़ दिया वास्तव में संधि का उल्लंघन मक्का की विजय का आधार बना।

उस समय अरब द्वीप के मूर्तिपूजक चार तरह के थे।

1. जिनसे मुसलमानों की किसी प्रकार की संधि नहीं थी।
2. जिनसे संधि तो थी परन्तु कोई समय सीमा तय नहीं थी ।
3. जिनके साथ समय सीमा की संधि थी और वह सब उसका पालन करते थे।
4. जिनके साथ समय सीमा संधि हुई परन्तु संधि का पालन नहीं कर सके दूसरे साल ही संधि को तोड़ दिया।

अब समझिए! पहले और दूसरे नम्बर के मूर्तिपूजकों के लिए इस सूरत की पहली और दूसरी आयत में बताया गया है उनको चार महीने की खुली छूट दी गई जिनमे वे अपने भविष्य के बारे में विचार कर लें।

तीसरी आयत मे तीन नम्बर के लोगों के बारे बताया गया क्योंकि ये लोग सधी का पालन करने वाले थे। इसलिए मुसलमानों के लिए

अल्लाह का आदेश है कि संधि का पूर्ण पालन तुम भी करो,।

पाँचवी आयत जिसको आपने पकड़ा है यह केवल उन ही लोगों के लिए है जिनसे 6 हिजरी में संधि की थी। और मुसलमानों ने नीचे उतर कर उनकी शर्तो पर सुलह की थी अर्थात जब उन लोगों ने अपनी शर्तो पर संधि करके उसको तोड़ दिया, तो अब वे किसी भी छूट के हकदार नहीं हैं। बस अब उन्हे कुछ मुबारक महीनो तक की मोहलत दी जाती है उनको अपने भविष्य की स्वयं चिंता करनी चाहिए कि इसके बाद संधि तोड़ने का दण्ड भुगतना होगा। यहाँ आपका इस आयत को सब अनेकेश्वरवादियों के लिए समझना बिलकुल गलत है परेशानी की बात यह है कि आप उस समय के अरब देश के हालात और कुरआन करीम की आयतों की व्याख्या से बिलकुल सम्बध नहीं रखते इसीलिए आपको ठोकर लग रही है।

(2) ''ऐ ईमान वालों, मूर्ति की पूजा करने वाले नापाक हैं, तो वह इस साल के बाद मस्जिद हराम (काबा मस्जिद) के करीब भी न आएं।'' (सूरह नं. 9 आयत नं. 28)

आपने आधी आयत का अनुवाद किया था मैने अगले वाक्य का भी अनुवाद कर दिया ताकि बात साफ हो जाए अब आप विचार करें कि मूर्तिपूजकों की नापाकी को मस्जिद हराम से इस आयत में क्यों जोड़ा गया यदि वो गोबर, मानव मल की तरह नापाक होते तो हर जगह हर हाल में उनसे दूरी का आदेश दिया जाता। लेकिन इस आयत ने उनको सिर्फ मस्जिद हराम से दूरी का आदेश दिया, वजह इसकी यह थी कि ये लोग (काबे की परिक्रमा) नंगे होकर करते थे और उसी को उन्होने धर्म बना रखा था बल्कि उस ज़माने की कुछ कविताओं से ज्ञात होता है कि महिलाएं भी नग्न अवस्था में काबे की परिक्रमा किया करती थीं। यह सब इस्लाम धर्म की शिक्षाओ के विरुद्ध है। मैं यह समझता हूँ कि आप भी सर से पैर तक नग्न होकर लोगों के सामने आकर अल्लाह की इबादत को पसन्द नहीं करेंगे। कुरआन ने ऐसे कृत्यों को पाप बेशर्मी

कहा है क्योंकि इसका कारण उनका अनेकेश्वरवाद है इसलिए यह काम करने वाला भी अपवित्र कहा जाएगा और जो अवधारणा उनको इस अपवित्र काम की तरफ ले जा रही है वह भी अपवित्र मानी जाएगी।

(3) बेशक, काफिर लोग तुम्हारे खुले दुश्मन हैं।''

(सूरह नं. 4, आयत नं. 101)

आपने पूरी आयत को छोड़ दिया और केवल अंतिम वाक्य का अनुवाद कर लिया, अतः अपने मतलब वाली बात ले ली और आयत में जिससे बात स्पष्ट होती है उसको छोड़ दिया इसलिए मैं पूरी आयत का अनुवाद करके इसके अर्थ और इसकी व्याख्या को स्पष्ट करता हूँ।

> ''और जब तुम देश में यात्रा करो तो तुम पर पाप नहीं है कि कुछ कमी करो नमाज़ में से अगर तुमको डर है कि सताएगें अनेकेश्वरवादी तुमको। इसमें कोई शक नहीं है कि अनेकेश्वरवादी लोग तुम्हारे खुले दुश्मन हैं।''

इन आयतों के पीछे एक कथा है। अल्लाह के रसूल मुहम्मद स.अ.व. मुसलमानों के एक समूह के साथ यात्रा कर रहे थे, यात्रा इस तरह होती थी कि ठन्डे समय सफर करते और गर्मी के समय टेन्ट (पड़ाव) डाल दिया जाता था। इसी तरह एक बार ''उसफान'' नामक जगह पर पड़ाव डाला गया, इसके निकट एक जगह जिसका नाम ''ज़जनान'' था, वहाँ अनेकेश्वरवादी लोग जमा हो गए और यह षड़यंत्र रचने लगे कि जब यह मुसलमान नमाज़ पढ़ने लगेंगे तो अचानक इन पर हमला करके इनका माल लूट लेंगे, इसकी सूचना नबी पाक स.अ.व. को फरिश्ते द्वारा दी गई और यह आयत उतरी कि उनकी बुरी नियत है इसलिए तुम अपनी नमाज़ों को छोटा कर लो ताकि ये लोग अपने बुरे कामों में सफल न हो सकें।

यहाँ यह बात सोचने की है मुसलमान उनसे लड़ने नहीं गए थे, ये लोग तो संयोग से धूप व गर्मी के कारण यहाँ ठहर गए थे, ऐसे यात्रियों

की सहायता के बजाए उनको लूटने की योजना बनाना क्या मानवता हुई? अब यदि कुरआन उन षड़यंत्रकारियों को खुला शत्रु बता रहा है तो क्या बुरी बात है। अगर आज आपके साथ ऐसा मामला होगा तो क्या आप उसको अपना मित्र बताएंगे ?

मैं यह बात यकीन से कहता हूँ कि आप लोग न अरबी भाषा से परिचित हैं न आपने समझकर कुरआन का पाठ किया और न ही उसकी व्याख्या की पुस्तकों पर दृष्टि डाली है क्योंकि कुरआन को बिना व्याख्या के समझे मात्र उच्चारण से नहीं समझा जा सकता। यदि आपने थोड़ा सा भी विचार किया होता और इसकी व्याख्या को पढ़ा होता तो आप अवश्य समझ जाते कि कुरआन अनेकेश्वरवादियों के लिए नहीं बल्कि उनहीं लोगों के लिए कह रहा है जिनके चरित्र एवं शत्रुता को इस आयत के समक्ष प्रस्तुत किया गया एवं जिसके अनुवाद को शायद आपने जान बूझकर छोड़ दिया।

(4) ''ऐ ईमान वालो! उन काफ़िरों से जो तम्हारे आस पास हैं लड़ो और चाहिए कि वह तुम में सख़्ती पाएं।''

(सूरहः 9 आयत 123)

अरब महाद्वीप में सबसे बड़ी ताकत मूर्तिपूजको की थी और उनमें भी जिनकी धाक लोगो के दिलों मे बैठी थी वे मक्का में रहने वाले कुरैश थे, कुदरत की हिकमत है कि आखिरी पैगम्बर मुहम्मद स.अ.व. भी वहाँ उसी क़बीले में जन्मे थे।

अल्लाह ने 40 वर्ष की आयु तक आपको पैगम्बर की उपाधी नहीं दी। जनाब मुहम्मद स.अ.व. के अच्छे आचरण, व्यवहार, ईमानदारी, सच्चाई, विवेक आदि गुणो से इलाके के लोग आपका सम्मान करते थे और आप पर पूरा भरोसा भी किया करते थे लेकिन जैसे ही आपको पेगम्बर बनाया गया और आपने नये धर्म अर्थात एक ईश्वर की इबादत का प्रचार किया तो सबसे पहले कुरैश क़बीले की तरफ से आपका विद्रोह शुरू हुआ और चूंकि कुरैश की धाक पूरे अरब देश में लोगों के

दिलों पर बैठी हुई थी इसलिए दूसरी जातियों/क़बीलों के लोगों का इस्लाम के विरूद्ध खड़ा होना स्वभाविक रूप से होना ही था। जिस प्रकार क़ुरैश इस्लाम को जड़ से उखाड़ फैंकना चाहते थे ठीक उसी प्रकार से ये आस पास के लोग भी इस्लाम और इस्लामी हकूमत का अन्त करना चाहते थे। उन परिस्थितियों में इस आयत के मतलब पर विचार करेंगे तो कोई आपत्ति नहीं रहेगी क्योंकि निकट वाले दुश्मन को छोड़कर दूर वाले दुश्मन से लड़ना कोई बुद्धिमानी का काम नही। लेकिन यदि कोई मुसलमानों से शत्रुता नहीं रखता और धर्म से ऊपर उठकर मानवता के आधार पर मुसलमान से अच्छा व्यवहार रखता है तो उसके सम्बंध मे यह आदेश नहीं (सूरत 60 आयत 8, 9 देखें)

(5) जिन लोगों ने हमारी आयतों का इंकार किया (इस्लाम व कुरआन को मानने से इंकार किया) उन्हें जल्द ही हम आग में झोंक देगें, जब उनकी चमड़ी पक जाएगी तो हम उन्हे दूसरी खालों से बदल देंगे ताकि वे दण्ड का स्वाद चख लें बेशक अल्लाह ही परम शक्तिमान है।'' (सूरह नं. 4 आयत नं. 52)

इस आयत का सम्बन्ध अल्लाह से है जो किसी पापी को वह मौत के बाद दण्ड देगा। इस्लाम की दृष्टि से यदि मुसलमान भी अल्लाह के क़ानून व हिसाब किताब से नहीं डरेगा, लोगो को सताएगा और यातनाएं देगा तो मौत के बाद उसको भी ऐसी ही यातनाएं नर्क में दी जाएंगी। मुसलमान पापियों का नर्क में डाला जाना और अपने पापों के दण्ड में आग के अज़ाब को भुगतना कुरआन व हदीस से प्रमाणित है। नर्क की यातनाएं केवल अनेकेश्वरवादी ही के लिए नहीं है।

फिर आप इस आयत को पेश कर रहे हैं लेकिन यह नहीं बताते हैं कि आयत किन लोगों के बारे में है। इस आयत से 6 आयत पहले आयत नं. 51 में इस विषय की ओर संकेत है कि अल्लाह के नबी ने मदीने में यहूदियों से संधि की थी कि न हम तुम पर और न तुम हम

पर आक्रमण करोगे और यदि कोई दूसरा तुम पर आक्रमण करेगा तो हम तुम्हारे साथ होकर उसका मुक़ाबला करेगें और तुम हमारे शत्रु के मुकाबले मे इसी प्रकार हमारा साथ दोगे। लेकिन क़ुरैश क़बीले और मुसलमानों के बीच युद्ध के बाद यहूद के दो सरदार मदीना से मक्का गए, और संधि के विरूद्ध उन लोगो से कहा कि तुम मुसलमानों पर चढाई करो हम तुम्हारा साथ देंगे, यहूदी सरदारों ने मूर्तिपूजकों से यह भी कहा तुम्हारा धर्म इस्लाम धर्म से अच्छा धर्म है। यही वह पाप है जिसका दण्ड इस अयात में आया है जब तक इस आयत से पहली आयतों को नहीं पढ़ा जाऐगा तो इस आयत का अर्थ नहीं समझा जा सकता।

(6) ऐ ईमान वालो! अपने बाप और भाईयों को अपना दोस्त मत बनाओ अगर वे ईमान के मुकाबले में कुफ्र को पसंद करें और तुमसे जो कोई उनसे दोस्ती का नाता जोड़ेगा तो ऐसे ही लोग निंदयी होंगे।''

(सूरत: नं. 9 आयत नं. 23)

अर्थ यह कि यदि वह तेरे माता पिता हैं एवं दुनिया में उनका तेरे ऊपर सबसे बड़ा एहसान है लेकिन अल्लाह का एहसान उन पर भी भारी है इसलिए अल्लाह के हक़ के मुकाबले उन माता पिता का हक़ पीछे रहेगा, अतः इस आयत में आदेश जारी हुआ कि माता पिता एवं भाई से इस प्रकार से मित्रता न कर जो तुझको अल्लाह के मार्ग से हटा कर नर्क की आग में धकेल दे, इसके बाद भी अल्लाह का आदेश यही है कि दुनिया में उनसे अच्छा व्यवहार करना, देखभाल करना, पूरी सेवा करना, उनके स्वास्थ्य का ख्याल रखना तेरे ऊपर फर्ज़ (अनिवार्य) है। (सूरत नं. 31 में आयत नं 15 देखिए) वहाँ अल्लाह कहते हैं अनेकेश्वरवादिता में उनकी आज्ञा न मानो मगर जीवन मे उनसे अच्छाई का व्यवहार करो, इसमे लापरवाही न करना अन्यथा क़यामत के दिन तेरे लिए कठिनाई का कारण बन सकता है।

(7) ''कि अल्लाह काफिरो को मार्ग नहीं दिखाता।''

(सूरत: नं. 9 आयत 37)

यहाँ भी आपने पूरी आयत को छोड़ दिया और एक आख़री वाक्य का अनुवाद कर लिया, हालांकि यदि पूरी आयत को पढ़ा जाए तो ज्ञात होता है जो लोग अन्याय करने के लिए अल्लाह के आदेश के साथ खिलवाड़ करते थे, अपनी इच्छा से जब चाहा हराम को हलाल कर लिया और हलाल को हराम कर लिया यह आदेश उन्ही पापियों के लिए है नहीं तो सहाबा रजि. (मुहम्मद स.अ.व. के अनुयायी) इतनी बड़ी जमात जो क़ियामत तक हर मुसलमान के लिए इमाम और अनुयायी की हैसियत रखते हैं और जिन्होने अपनी जान व माल को इस्लाम धर्म के लिए बलिदान कर दिया। क्या वे और उनके पूर्वज काफिर नहीं थे? यदि अल्लाह उनको हिदायत न देता तो उनको दुनिया में यह महान व्यक्तित्व कैसे मिल गया?

(8) ''ऐ ईमान लाने वालो! तुमसे पहले जिनको किताबें दी गई थीं जिन्होने तुम्हारे धर्म को हंसी खेल बना लिया है, उन्हें और इन्कार करने वालों को अपना मित्र न बनाओ और अल्लाह का डर रखो अगर तुम ईमान वाले हो।'' (सूरत: नं. 5 आयत 57)

अल्लाह के रसूल मुहम्मद स.अ.व. और उनके साथ सहाबा रजि. नमाज़ पढ़ रहे थे जब ये लोग सज्दा करने लगे तो ये दोनो ''एहले किताब, व अनेकेश्वरवादी'' मज़ाक उड़ाने लगे, इस पर यह आयत उतरी है और ऐसे लोगों से मित्रता रखने से मना कर दिया गया, लेकिन आम हालात में केवल मित्रता रखना यानि ग़ैर इस्लामी लोगों के साथ उठना बैठना, विवाह में जाना, खाना पीना इस्लाम मे मना नहीं है। जो दोस्ती मना है पारा नं. 4 सूरत 3 आयत 118 में अंकित है, इसको देखिए जिसका अर्थ यह है कि ऐसी दोस्ती जिसमें दुश्मनी रखने वाले लोग

तुम्हारे जाति, संगठन व सेना के राज़ ले उड़े तुम्हारे लिए जाएज़ नहीं। इसी को इस आयत मे कहा गया है वह ऐसी ही दोस्ती है जिसमे तुम्हारे सामूहिक और फौजी भेद खुल सकते हैं, कुरआन ने इस सम्बध में जो नियम बताया है इसको सूरह 60 की आयत नं. 8 और 9 में अवश्य देखिए, आपकी सारी शंका दूर हो सकती है।

इस जगह आवश्यक है कि आप अगली आयत भी पढ़ें जिसमे अल्लाह कहते हैं "जब मुसलमान अज़ान देकर लोगों को अल्लाह की इबादत नमाज़ की तरफ बुलाते हैं तो यह लोग इसके साथ हसीं और खेल करते हैं।" मज़ाक उड़ाते है, यहाँ व्याख्याकार यह भी लिखते हैं कि मदीने मे एक ईसाई था, जब अज़ान देने वाला कहता "मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के सच्चे रसूल हैं" तो वह ईसाई बद दुआ देता कि ईश्वर इस झूठे को आग मे जला दे। उन लोगों की इस हरकत पर यह आयत उतारी गई और ऐसे इस्लाम के खुले दुश्मानों से दोस्ती रखने से मना किया गया है। आपका यह समझना कि हर गैर-मुस्लिम से ज़रा सी दोस्ती से इस्लाम मना करता है, यह ग़लत है।

(9) "फटकारे हुए मुनाफिक/मूर्तिपूजक जहाँ कहीं पाए जाएंगे पकड़े जाएंगे और बुरी तरह कत्ल किए जाएंगे।" (सूरत न 33 आयत न 61)

आपने आयत के एक छोटे से टुकड़े को अलग करके उठा लिया जिसकी वजह से कुछ मालूम नहीं होता कि यह सज़ा और फटकार उस पर किस लिए है मैं नहीं जानता कि आप ने जानबूझकर ऐसा किया है या अनजाने में। इसलिए मैं अब पूरी आयत का अनुवाद कर देता हूँ ताकि आपका आरोप बाक़ी न रहे।

"और अगर कपटी लोग और वह लोग जिनके हृदय में वासना की बीमारी है और वह लोग जो मदीने में अफवाह (झूठी खबरें) उड़ाया करते हैं अपनी हरकतों से बाज न आए तो हम आपको उन पर मुसल्लत कर देंगे फिर वह लोग आपके पास मदीना में बहुत ही कम

रहने पाएंगे, वह भी फटकारे हुए जहाँ भी मिलेगे पकड़ धकड़ और मारधाड़ की जाएगी।''

विचार करने की बात है कि इस सूरत में आयत नंबर 28 से लेकर आयत नंबर 61 तक महिलाओं के बारे में विशेष रूप से महिलाओं के पर्दे के बारे में बातें चल रही हैं, इसी के अंतर्गत यह आयत भी है ऐसे कपटी लोग जो चरित्रहीन थे और आवश्यकता हेतु बाहर निकलने वाली शरीफ मुस्लिम महिलाओं को छेड़ते थे और फिर तरह तरह की खबरें उड़ाते थे जिससे शरीफ औरत अपने लिए अपमान महसूस करती थी, कुरआन ने इस आयत में उनको खबरदार किया है, या तो बाज़ आ जाओ और अश्लीलता से अपने आप को पाक करो नहीं तो तुम धुत्कार और फटकार के लिए तैयार हो जाओ जिसका यहाँ वर्णन किया है।

अब आप बताएं कि 1400 सौ साल पहले इस्लाम ने शरीफ महिलाओं के साथ मुनाफिको की वासना पूर्ण और अश्लील हरकतों के खिलाफ कानून बनाए थे जिन पर आपको आपत्ति है। हमारी सरकार भी तो आज वही सब कुछ कर रही है लेकिन क्योंकि कानून कमज़ोर है इसलिए इसके परिणाम भी कमज़ोर है। मेरा ख्याल है अगर आपने पूरी आयत को मिलाकर अनुवाद किया होता एवं व्याख्या पर नज़र डाली होती तो फिर आयत के बारे में कोई शंका न रहती अगर इस पूरे कथन पर अब भी दृष्टि डालेंगे तो इसकी सच्चाई को कबूल कर लेंगे और आपत्ति की कोई संभावना नहीं रहेगी।

(10) ''यकीनन ही तुम और वह जिसको तुम अल्लाह के सिवा पूजते थे नर्क का इंधन हो, तुम अवश्य इस के घाट उतरोगे।'' (सूरत नंबर 21 आयत नंबर 98)

इस आयत में जो कुछ भी कहा जा रहा है इसका संबंध इस दुनिया से नहीं है अपितु मौत के बाद आने वाले जीवन से है क्योंकि पूजा सिर्फ अल्लाह का हक़ है जिसकी हकूमत आसमानों और ज़मीन पर

है और जिसने इंसान को दुनिया की जिंदगी में इतनी नेमते दी है और हर मिनट देता रहता है जिसकी कोई गिनती नहीं हो सकती, वह नहीं चाहता कि ऐसे दाता और करीम को छोड़कर जिसकी हुकूमत ज़मीन आसमान सब पर है और हमेशा से है और हमेशा रहने वाली है किसी ऐसे की इबादत की जाए जिसके पास न अपने हाथ है न अपने पैर हैं न ही अपनी आँखे हैं और न ही कान हैं और अगर हैं तो उसी के दिए हुए हैं। इसलिए इस आयत के बारे में हमें कुछ कहने का हक नहीं है आप खुद अपनी दुनिया और मौत के बाद वाले जीवन के बारे में सोचिए और फैसला कीजिए।

(11)"और उस से बढ़कर कौन अत्याचारी होगा जिसे उसके रब की आयतों के द्वारा चेताया जाए और फिर भी वह उनसे मुंह फेर ले, (इस्लाम को छोड़ दे) अवश्य ही हम ऐसे अपराधियों से बदला लेंगे।"

(सूरत नंबर 32 आयत नंबर 22)

मुझे आश्चर्य है आपने आयत में इस्लाम छोड़ देना कहाँ से निकाल लिया? यहाँ तो कहीं भी इस्लाम छोड़ देने का वर्णन नहीं है। यहाँ तो आयत में यह बताया जा रहा है कि अपनी जान पर जुल्म करने वालों में इससे बड़ा अत्याचारी कौन हो सकता है जिसे अल्लाह की आयतों और उदाहरणों के जरिए याद दिलाया गया फिर वह उनसे मुँह मोड़ गया। यहाँ आयत में यह नहीं बताया गया की याद दिलाने वाला कौन है?

आपको इसी सूरत की आयत नं. 15 पढ़नी चाहिए तभी इस आयत के अर्थ स्पष्ट होंगे। अल्लाह आयत नं. 15 मे कहता है "हमारी आयतों को वही लोग मानते हैं जब उनको उन आयतों से समझाया जाए तो सज्दे में गिर पड़ें, अपने पालनहार की अच्छाइयों के साथ, और वह घमण्ड नहीं करते" अर्थात अल्लाह के भय और उसके प्रेम में अपने आपको सर से पैर तक उसका मोहताज मानकर सज्दे में गिर पड़ते हैं, ज़बान से अल्लाह की पवित्रता का वर्णन करते हैं, हृदय से अपनी बंदगी

का इक़रार करते हैं।

फिर इसके बाद की आयतों में अल्लाह अपने आज्ञाकारी और अवज्ञाकारी बंदो का वर्णन करके इस आयत नं. 22 मे अल्लाह फरमाता है कि ''उससे बड़ा अत्याचारी कौन है जिसको उसके पालनहार की आयतों से समझाया गया फिर वह उनसे मुँह मोड़ गया, अवश्य हमको उन पापियों से बदला लेना है।''

गोयल जी, यदि आपने कुछ आयत पहले से इन आयतों को पढ़ा होता और समझा होता तो आपको कोई आपत्ति नहीं होती क्योंकि ईश्वर के आज्ञाकारी बन्दो पर उसकी कृपा का होना और इस आयत नं. 22 के अनुसार ईश्वर के आज्ञाकारी, पापी बन्दों पर उसका क्रोध होना आपकी प्रस्तुत की हुई आयत के अनुसार इस्लाम धर्म में ही नहीं बल्कि प्रत्येक धर्म में मानी हुई है, इसलिए आप ध्यान दें। आयत नं. 22 में तो प्रत्येक धर्म के माने हुए विश्वास के अनुसार ही बात है कोई नई बात तो नहीं है।

(12-13) ''अल्लाह ने तुमसे बहुत सी गनीमत (लूट का माल) का वादा किया है जो तुम्हारे हाथ आएंगी तो जो कुछ ग़नीमत (जैसे लूटा हुआ धन या औरतें) से तुम ने प्राप्त की उसे हलाल व पाक समझ कर खाओ (प्रयोग करो)।''

(सूरत नं. 48, आयत नं. 20, सूरत नं. 8 आयत नंबर 69)

बड़े विचित्र ढ़ंग से आप व्याख्या कर रहे हैं। क्या कुरआन ऐसी किताब है कि जो आपके मन में आए वही कह दें या लिख दें, कुरआन स्पष्ट शब्द में बोल रहा है जिसका अनुवाद है माले गनीमत में से खाओ, और आपने गनीमत का अर्थ यहाँ लूट का माल या महिलाएं कर दिया तो क्या औरतें खाई जाती हैं? जो बात कहनी चाहिए सोच समझकर कहनी चाहिए आपको सोचना चाहिए कि दुनिया में जहाँ युद्ध होता है तो हर जीतने वाला दूसरे के माल पर कब्ज़ा करता है। हिंदुस्तान और

पाकिस्तान की जंग के बाद दोनों देशों ने एक दूसरे पर अपनी बड़ाई जताने के लिए एक दूसरे के टैंक को जगह-जगह खड़े कर रखे हैं, इसको आप क्या कहेंगे? इस्राइल ने शाम पर हमला किया और गौलान की पहाड़ियो पर क़ब्ज़ा कर लिया आप इसे क्या कहेंगे? इस्राइल ने उर्दन पर हमला किया और यरूशलम पर क़ब्ज़ा कर लिया अब सारे अरब एक तरफ और इजरायल एक तरफ अगर आप में उसके ख़िलाफ आवाज़ निकालने की ताकत नहीं है तो इस्लाम पर एतराज़ क्यों करते हैं मैं तो यही पर बस करता हूँ नहीं तो इस्लाम में माल गानिमत के बारे में जो विस्तार से पवित्र वर्णन है उनको बयान किया जाए तो बात बड़ी लंबी हो जाएगी।

फिर आपने दूसरी आयत में हलाल व पाक समझ कर खाओ के आगे ब्रैकेट में (प्रयोग करो) यानी आप यह बताना चाहते हैं कि पाक समझकर खाओ का अर्थ यहाँ प्रयोग करना है। आपने जो गलती पहले माले गनीमत में महिलाओं को अपनी तरफ से दाखिल करके की है उसको सही साबित करने के लिए ''खाओ'' का अर्थ ''इस्तेमाल करो'' किया है। हालांकि कुरआन के वर्णन में ये कहीं भी नहीं है। कुरआन ऐसी किताब नहीं है जिस तरह चाहो इसकी व्याख्या कर लो, गलत को सही और सही को गलत कर लो, यह बात इसलिए कह रहा हूँ यह आयत जंगे ब्रद के बारे मे उतरी है।

इस्लाम और इस्लाम के शत्रु कुरैश के मध्य सबसे पहला युद्ध है इसमें महिलाओं का कोई मुद्दा नहीं था, दोनों तरफ से पुरूष ही थे, क्योकि आप यह सब नहीं जानते इसलिए आपने अपनी बेखबरी और इस्लाम और घटनाओ को न जानने के आधार पर इस्लाम के विरोध को सामने रखते हुए ग़लत व्याख्या कर दी एवं आरोप लगा बैठे। जबकि ऐसा नहीं है।

आपने यहाँ माले गनीमत का अनुवाद ''लूट का माल'' किया है क्योंकि आप अरबी भाषा का एक अक्षर भी नहीं जानते। इस्लाम में माल गनीमत इस माल को कहा जाता है जो शत्रु से रणभूमि में विजय

के बाद किसी मृत शरीर से तलवार आदि उतारी जाए या शत्रु पराजित हो कर अपना धन आदि छोड़ कर भाग जाए। लेकिन जिस माल को धोखा देकर किसी से छीना जाए या बगैर युद्ध के शान्ति के समय कब्ज़ा कर लिया जाए इसको ''माल गनीमत'' नहीं कहा जाएगा इस्लाम में वह लूट का हराम माल है चाहे वह मुसलमान का हो या किसी अनेकेश्वरवादी का। माले गनीमत का अनुवाद ''लूट का माल'' करना अरबी भाषा और परिभाषा से परिचित न होने का प्रमाण है।

(14) ''ऐ नबी! काफिरों और मुनाफिकों के साथ जिहाद करो (आतंकवादी बनकर गैरमुस्लिमों का वध) और उन पर सख़्ती करो और उनका ठिकाना नर्क है और वह बुरी जगह है जहाँ वह पहुंचे।''

(सूरत नं. 26 आयत नं.9)

मैं बार बार यही बात कह रहा हूँ कि आप कुरआन के और इसकी व्याख्या के बारे में कुछ नहीं जानते अगर जानते तो आप इन आयतों पर कभी भी आपत्ति न करते। आपने इस आयत में शब्द ''जिहाद'' को तलवार से कत्ल के अनुवाद में अपनी तरफ से ले लिया और ब्रेकिट में इसका अर्थ (आतंकवादी बनकर गैर-मुस्लिमों का वध) लिख दिया जबकि इस आयत में ''जिहाद'' वध के अर्थ में हो ही नहीं सकता क्योंकि यह इस्लामी नियम के विरूद्ध है। जिसकी संक्षिप्त परिभाषा यह है कि ''नबी'' या ''रसूल'' वही होते हैं जो कदापि ख़ुदा के किसी कानून की अवहेलना नहीं कर सकते, क्योंकि नबी पाप और ख़ुदा के आदेश की अवहेलना से मुक्त होता है। नबी अपनी जान दे सकता है पर अल्लाह का आदेश नहीं तोड़ सकता। यह इस्लाम धर्म का एक नियम है।

अब इस आयत में ग़ौर कीजिए यहाँ अल्लाह आदेश दे रहा है, जिसको आदेश दे रहा वह अल्लाह का नबी है और जिस वस्तु का आदेश दे रहा है वह काफिर और मुनाफिक़ लोगों से जिहाद है, अगर

इस आयत में शब्द ''जिहाद'' तलवार से वध के अर्थ में होता तो बयान किए हुए नियम के अनुसार इस्लाम के 23 वर्षीय इतिहास में कभी न कभी मुनाफिक़ लोगों से क़िताल और जंग ज़रूर अल्लाह के नबी स.अ.व. ने की होती, लेकिन आप पूरा इतिहास पढ़ डालें कभी भी मुनफिक़ो से तलवार की जंग अल्लाह के नबी स.अ.व. से प्रमाणित नही, हालांकि मुनाफिक़ों की तरफ से इस्लाम और मुसलमानों के ख़िलाफ बड़े बड़े षडयंत्र रचे जाते और अनुचित व्यवहार किए जाते थे लेकिन कभी भी अल्लाह के नबी ने न खुद तलवार उठाई और न कभी मुसलमानों को तलवार मनाफ़िको पर उठाने की इजाज़त दी।

आपको ज्ञात नहीं कि अरबी भाषा में जिहाद शब्द ''अथक प्रयास'' को कहा जाता है। इस आयत मे वार्णित नियम जिहाद शब्द अपने असली अर्थ मे है, युद्ध के अर्थ में नहीं हो सकता, कुरआन शरीफ में और भी कई जगह यह शब्द ''जिहाद'' वध के अर्थ में नहीं बल्कि ''अथक प्रयास'' करने के अर्थ में है इसलिए इस आयत में अर्थ यह होगा कि ''ऐ नबी आप मूर्तिपूजक और मुनाफिकीन के साथ ज़बान से जिहाद करें,'' अर्थात अल्लाह के संदेश को और इस्लामी मान्यताओं और कार्यो की उनको दावत पेश करें और पूरी कोशिश करें कि उनकी ग़लत हरकतों और ग़लत कार्यो पर रोक लग जाए और अल्लाह के कानून जारी करने में जरा भी नर्मी या रियायत न की जाए इसलिए हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उन लोगों के ईमान के पीछे यू कहना चाहिए कि अपनी जान लगा दी। कुरआन में सूरत नंबर 18 आयत नंबर 6 और सूरत नंबर 26 आयत नंबर 3 और सूरत नंबर 35 आयत नंबर 8 में तीन जगह अल्लाह फरमाते हैं ''ऐ मुहम्मद ऐसा लगता है कि उन लोगों के ईमान न लाने के अफसोस में आप अपनी जान खपा डालेंगे'' इस पूरे विस्तार का सारांश यह है कि इस आयत में जिहाद लड़ाई के मायने में नहीं बल्कि ''अथक प्रयास'' के अर्थ में है और किसी भी अच्छे काम के लिए ''जान तोड़'' कोशिश करना अच्छी चीज़ है बुरी चीज़ नही।

(15) ''तो अवश्य हम कुफ्र करने वालों को (इस्लाम को धोखा देने वालों को) सजा का मज़ा चखाएंगे और अवश्य हम उन्हें सबसे बुरा बदला देंगे इस काम का बदला जो वो करते थे।'' (सूरत नंबर 41 आयत नंबर 27)

(16) ''यह बदला है अल्लाह के शत्रुओं का (नर्क) की आग (अनेकेश्वरवादियों को नर्क) इसी में उनकी सज़ा का घर इसके बदले में कि हमारी आयतों का इनकार (इस्लाम और कुरआन को नहीं अपनाया) करते थे।'' (सूरत नंबर 41 आयत नंबर 28)

यहाँ भी आपने वही ग़लती की है जो पहले करते चले आएं हैं, क्योंकि आप इस सूरत की आयत नंबर 27 और 28 दो आयतों का अनुवाद तो ले आए जबकि यह दोनों आयत उनसे पहली आयतों का परिणाम हैं यानी आपने वह आयत जिसमें अल्लाह ने उन लोगों के पाप बताए थे उसको छोड़ दिया और इस पाप की अल्लाह ने जो सज़ा उनके लिए बताई है उसको लाकर रख दिया। अपनी तरफ से यह अवासतविक चीज़ बताने के लिए कि इस्लाम और कुरआन सब मूर्तिपूजको को बिना किसी कारण के अज़ाब और नर्क का पात्र बताता है।

इसलिए आवश्यक समझता हूँ कि मैं पहली आयत का भी अनुवाद करूं जो इन लोगों के पाप को वर्णित कर रही है जिस पर आयत नं. 15,16 की आयतो में बयान किया हुआ दंड अल्लाह की ओर से बताया जा रहा है और आपने लगता है कि इसको जानबूझकर छोड़ दिया है वह यह है:-

''और यह काफिर लोग आपस में कहते हैं के इस कुरआन को सुनो ही मत और इसके मध्य में शोरगुल मचा दिया करो, शायद तुम ही प्रभावी रहो।''

इसके पश्चात अल्लाह इन दो आयतों में जो आपने लिखी हैं उनके पाप और गुनाह पर सजा बता रहा है।

कुरआन अपने अंदर ऐसा प्रभाव रखता है जो अकथनीय है अल्लाह के नबी के बड़े बड़े दुश्मन और बड़े-बड़े काफिर जो अरबी थे और कुरआन की आयतों के अर्थ थोड़ा बहुत समझते थे, वह सुनकर इस्लाम ले आते और जब अल्लाह के नबी मोहम्मद स0अ0व खुद कुरआन का पाठ करते तब तो इसका अकथनीय प्रभाव पड़ता था इंसान तो इंसान जिन्नात भी ईमान ले आते थे।

हज़रत उमर रजि0अ0 (दूसरे ख़लीफा) नबी पाक स.अ.व. को क़त्ल करने के लिए निकले थे, परन्तु बहन के घर कुरआन की कुछ आयतें पढ़ते ही काया पलट गई। जाकर रसूल स.अ.व. के पैरों मे गिर गए।

हब्शा का ईसाई बादशाह कुरआनी आयात को सुनकर फौरन इस्लाम ले आया। और बहुत से किस्से हैं जो कुरआन सुनकर शिर्क व कुफ्र और मूर्तिपूजा को छोड़कर अल्लाह की तौहीद (एकेश्वरवादी) आस्था को दिलो जान से मानने वाले बन गए इसीलिए कुछ काफिर लोगों ने यह योजना बनाई कि जब कुरआन पढ़ा जाए तो शोर मचाना, ताली बजाना, इस तरह करो के हम खुद या दूसरा कोई अल्लाह की किताब को सुन न सके अल्लाह तो सूरत नंबर 7 आयत नंबर 204 में फरमाते हैं कि ''जब कुरआन पढ़ा जाए तो उसको सुनो और चुप रहो,'' यह लोग इस डर से कि कहीं हम या दूसरा कोई कुफ्र से तौबा करके कुरआन से प्रभावित होकर ईमान न ले आए, शोर मचाते थे तालियां बजाते थे अल्लाह की किताब का अपमान और हिदायत के रास्ते को बंद करना वह वस्तु है जिस पर अल्लाह को क्रोध आता है। इस आयत में अल्लाह उसी क्रोध को प्रकट कर रहे हैं।

एक और चीज यह भी ध्यान देने के योग्य है कि आपने नंबर 15 में अनुवाद किया है ''तो हम ज़रूर कुफ्र करने वालों को (इस्लाम को धोखा देने वालों को) आपने यह ब्रैकेट में किस चीज़ को बयान किया

है? और यहाँ इस्लाम को धोखा देना कहाँ से आ गया? बहुत ज़्यादा ध्यान देने और बार-बार पढ़ने पर भी समझ में नहीं आया, जरा खुद आप भी ''जनाब गोयल साहब'' ध्यान देलें और देखें कि यह बेजोड़ ब्रैकेट कहाँ से आ गया! मैंने यह आवश्यक संक्षिप्त व्याख्या की है, ताकि यह बात साफ हो जाए कि इस आयत में और इसके बाद वाली आयत में जिस दण्ड की बात कही जा रही है वह सब काफिरों के लिए नहीं है बल्कि उन्हीं लोगों के लिए है जो पहली आयत में बताएं हुए पाप को करते थे, और अल्लाह के बंदो के लिए सत्यमार्ग को बन्द करते थे।

(17) ''यकीनन अल्लाह ने ईमान वालों (मुसलमानों) से उनके जान और माल को इसके बदले में ख़रीद लिया है कि उनके लिए जन्नत है वे अल्लाह के रास्ते में लड़ते हैं, वे मारते भी हैं (इस्लाम फैलाने के लिए दहशतगर्द बनकर गैर-मुस्लिमों को मारना ज़बरदस्ती इस्लाम कबूल करवाना) और मारे भी जाते हैं।''

(सूरत:-नंबर 9 आयत नंबर 111)

जहाँ भी कुरआन में युद्ध और क़िताल (वध) करने का वर्णन आता है आप यह समझते हैं कि यह सब काफिरों या मूर्तिपूजको और मुशरिको के साथ है जबकि यह गलत है और इस्लाम पर झूठा आरोप है। सूरत नंबर 60 आयत नंबर 8, 9 को पढ़िए और ध्यान दें कि वहाँ मालूम होगा कि कुरआन जहाँ कहीं भी युद्ध और वध की बात कर रहा है वह उन्हीं व्यक्तियों के लिए करता है जो मुसलमानों को जीने का हक नहीं देते और उनकी हुकूमत को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते हैं। लेकिन जो लोग शांतिप्रिय स्वभाव के हैं और शान्ति के साथ रहते हैं उनके साथ इस्लाम ने ''जियो और जीने दो'' की परिभाषा को अपनाया है। हुदेबिया जगह पर जो अल्लाह के नबी स0अ0व ने कुरैश (मक्का के मूर्तिपूजको) के साथ संधि की जिसका संक्षिप्त वर्णन नं. 1 में आ चुका है। इसमें इस्लाम का ''जियो और जीने दो'' वाला मंत्र पूरी तरह प्रस्तुत

है इस आयत में भी मुसलमानों को ऐसे ही मुसलमान और इस्लाम दुश्मन लोगों के साथ जान हथेली पर रखकर जंग करने की बात कही जा रही है। यहाँ आपका यह समझना कि धर्म के आधार पर युद्ध की बात है गलत है। सूरत नंबर 9 की आयत नंबर 36 और (उन सब मुशरिको से लड़ना जैसा कि वह तुम से लड़ते हैं) को और सूरत नंबर 2 आयत नंबर 190 (और अल्लाह के रास्ते में उनसे लड़ो जो तुमसे लड़ते हैं) को पढ़िए वहाँ मालूम होगा कि कुरआन पाक भी उन लोगों से लड़ने का हुक्म देता है जो मुसलमानों से लड़ते हैं। और जो प्यार मुहब्बत अमन-शांति के साथ रहते हैं उनके लिए सूरत नंबर 60 की आयत नं. 8 स्पष्ट तरीके से अच्छे व्यवहार अच्छे रहन-सहन का आदेश कर रही है।

मैं समझता हूँ कि अनुवाद करने वाला जगह-जगह ब्रैकेट के अंदर दहशतगर्द कह कर मुसलमानों पर आरोप लगाकर अपने मन के छाले फोड़ता है अपने मन की बात पेश कर रहा है और अपने दिल को तसल्ली भी देना चाह रहा है वह यह नहीं जानता की कदम-कदम पर वह अरबी भाषा और कुरआन के अर्थ और व्याख्या से अन्जान है और न जानने का सबूत पेश करता चलता है।

(18) ''अल्लाह ने उन मुनाफिक लोगों पुरूष व महिलाओं और काफिरों से नर्क की आग का वादा किया है जिसमें वे हमेशा रहेंगे, यही उन्हे बस है। अल्लाह ने उन्हे लानत की है और उनके लिए हमेशा यातना है ग़ैरमुसलमान सदा नर्क में रहेंगे।'' (सूरत नं. 9 आयत 68)

इस जगह थोड़ा स्पष्टीकरण आवश्यक है, अरबी भाषा में कुफ्र का अर्थ ''इन्कार'' के होते हैं काफिर उस व्यक्ति को कहा जाता है जो ऐकेश्वरवादिता का इन्कार करता है और उसको खुले रूप और ढ़के रूप से भी नहीं मानता। कुरआन में मुनाफिक उस व्यक्ति को कहा जाता है जो दिल में तो कुफ्र (अनेकेश्वरवादी) आस्था होने को छुपा लेता है परन्तु लोगों के सामने अपने लाभ के लिए अपने आपको ऐकेश्वरवादी

दर्शाता है जिसका अर्थ यह हुआ काफिर, एवं मुनाफिक़ आस्था में तो एक हैं परन्तु दिखावटी पन में दोनों में फर्क है। क्योंकि दोनों की आस्था एक ही है एवं दोनों ही एक ईश्वर को नहीं मानते। इसलिए इस आयत में मुनाफ़िक़ मर्द व औरत के साथ कुफ्र करने वालों को भी मिला दिया नहीं तो आयत नं. 61 से मुनाफिकों की चर्चा होती चली आ रही है। अगर आप आयत नं. 61 से ध्यान करके पढ़े तो मालूम होगा कि अपने कुफ्र के साथ यह लोग रसूल स.अ.व. को यातना पहुंचाते थे, उनकी शान में अपमानित वाक्य, बोलते झूठ फैलाते, झूठी कसमें खाते लोगो को पाप की तरफ बुलाते और अच्छे कामों से रोकते, गरीब, बेसहारा लोगों की मदद भी नहीं करते, यही वह पाप हैं जिनसे अल्लाह नाराज़ है और उन्ही को कठिन यातना नर्क में देने की बात कह रहा है। क्योंकि आपने इस आयत को पूरे कथन से अलग कर लिया है इसलिए आपको भ्रम हो रहा है या आप इस प्रकार भ्रम पैदा करना चाहते हैं लेकिन अगर आप इसको पिछली आयतों से मिलाएंगे तो पता चलेगा यह अज़ाब उन लोगों के बड़े बड़े पापों की सज़ा है।

(19) ''ऐ नबी ईमान वालों(मुसलमानों) को लड़ाई पर उभारो, अगर तुम में 20 जमे रहने वाले होंगे तो वे 200 पर हावी हो जांएगें अगर तुम में 100 होंगे तो 1000 काफिरों (गैरमुसलमान) पर हावी रहेंगे।''

(सूरत: नं. 8 आयत: 65)

अगर आप इस आयत के पहले और बाद की आयतों को पढ़ेंगे तो मालूम होगा ये आयतें मुसलमानों और कुरैशे मक्का मूर्तिपूजको की सबसे पहले युद्ध जंग-बद्र के बारे मे हैं, जिसका कुछ विवरण आवश्यक है, अल्लाह के नबी अपने थोड़े से यानि 313 साथियों के साथ मदीना से निकले थे जिनमें अधिकतर मदीना के रहने वाले थे जो किसान थे जंग के बारे में उनको अधिक जानकारी नहीं थी। युद्ध साम्रगी, अस्त्र भी उनके साथ नहीं थे। क्योंकि युद्ध करने नहीं निकले थे और मुकाबले पर

कुरैश के 1000 पहलवान (जंगी योद्धा) जिनकी धाक पूरे अरब में बैठी हुई थी हर तरह के हथियारों से सजधज कर युद्ध के मैदान में जमा थे। इस अवसर पर हज़रत मुहम्मद स.अ.व. के लिए सबसे बड़ा मसला (समस्या) यह था कि हम हिजरत (अपना देश त्यागकर) मदीना आए हैं। मदीने के रहने वालों ने हमें स्थान दिया है ताकि हम आज़ादी के साथ अल्लाह के धर्म का प्रचार-प्रसार करें। जंग में भी हमारा साथ दें यह हमारा उनसे कोई मामला नहीं था और स्थिति ऐसी बनी कि कुरैश फौज के सामने पीठ दिखा देना और मैदान छोड़कर निकल जाना एक तरफ तो अल्लाह के नबी की शान के ख़िलाफ और दूसरी तरफ फिर हमेशा उन लोगों के सामने मैदान मैं सामने आना मुश्किल, इसलिए अल्लाह के नबी बार बार उन लोगों से जिनमें मुहाजिर तो गिने चुने थे अंसार (मदीने के मुसलमान) ही थे मौजूदा सूरते हाल में युद्ध और किताल के बारे में पूछ रहे हैं यहाँ तक कि मदीना के अंसार आपके उददेश्य को समझ गए और उनके सरदार ने कहा-या रसूल अल्लाह आप परेशान न हो, आप अगर हमसे कहेंगे कि हम अंसार अपने घोडे मौत से बे खौफ होकर समंदर में डाल दें तो हम डाल देंगे और पीछे नहीं हटेंगे और आपका साथ नहीं छोड़ेगे, यह सुनकर अल्लाह के नबी का चेहरा गुलाब के फूल की तरह खिल उठा इस परिस्थिति में अल्लाह फरमा रहा है, ‘‘ए नबी ईमान वालों को कुरैश की शक्तिशाली सुसज्जित सेना से डरना नहीं चाहिए युद्ध के मैदान मे सफलता अल्लाह की मदद पर आधारित है। हम वादा करते हैं कि तुमको सफलता देंगे आप उनको कुरैश की ताकतवर फौज का मुकाबला करने के लिए उभारें उनके हौसले को बुलंद कीजिए और खौफ डर को करीब न आने दें हम उनकी रक्षा करेंगे दुश्मनों को अपमानित कर डालेंगे पहली ही जंग में उनकी कमर तोड़ डालेंगे’’।

आप इस आयत का मतलब ले रहे हैं कि आयत का मतलब यह है कि अकारण मुसलमानों को हमेशा और हर वक्त लड़ने पर उभारें ताकि दुनिया में मुसलमानों के सिवा कोई गैर-मुस्लिम चैन सुकून के साथ न रह सके, ये इस्लाम के खिलाफ षडयंत्र है इस्लाम अमन व शांति

का धर्म है सूरत नंबर 4 आयत नंबर 90 को देखिए लेकिन जो लोग तुम्हारे दुश्मन हैं और तुमको जीने का हक़ नहीं देते और तुम्हारे धर्म को मिटाना चाहते हैं अगर अकारण तुम्हारे सर युद्ध थोप देते हैं तो उनके सामने सीसा पिघलाई हुई दिवार की तरह जमकर मुकाबला करना चाहिए। (सूरत 61 आयत 4 को देखिए)

(20) ईमान वालो! तुम यहूदियों और ईसाइयों से मित्रता का संबध न बनाओ।'' (सूरत नंबर 5 आयत नंबर 51)

कुरआन की बहुत सी आयतें मुसलमान को मजहब से ऊपर उठकर हर इंसान के साथ अच्छे रहन-सहन और अच्छे व्यवहार की शिक्षा देती हैं लेकिन कुरआन ने दूसरों को दोस्ती में अपना ऐसा राज़दार बना लेने से मना किया है जिससे कौमी, फौजी, और सामूहिक भेद दूसरों तक पहुंच जाएं।

सूरत नंबर 3 आयत नंबर 118, 119, 120, में इसको स्पष्ट देखा जा सकता है। यहाँ भी ऐसा ही सूरत पेश आई। बनू कुरेज़ा क़बीले के यहूदियों से मदीना में आकर अल्लाह के नबी ने संधि की थी, न हम आपस में लड़ेगे और न किसी दूसरे हमला करने वाले की मदद करेंगे बल्कि दुश्मन का मुकाबला मिलकर करेंगे लेकिन उन लोगों ने संधि को तोड़ दिया और मक्का जाकर कुरैश को मुसलमानों के ख़िलाफ उकसाया और कहा कि यदि तुम मुसलमानों से लड़ोगे तो हम तुम्हारी मदद करेंगे। इसी जंग को ''जंगे-अहज़ाब'' कहा जाता है। कुछ सीधे-साधे मुसलमानों की उनसे दोस्ती और संबंध थे उनसे यह लोग राज़ लिया करते थे। क्योंकि जंग की सूरत में यह चीज़ बहुत नुकसान वाली थी अतः मना कर दिया गया कि ऐसी दोस्ती नहीं की जा सकती जिससे संगठन की सूचनाएं, फौजी राज़ दुश्मनों तक पहुँच जाएं और संगठन को नुकसान हो जाए परन्तु यहाँ भी ऐसा रहन-सहन जिसमें एक दूसरे के लिए खराब समय में मददगार बने इससे नहीं रोका जा रहा, बल्कि ऐसी दोस्ती से रोका जा रहा है जिससे अपने ऐसे राज़ दूसरों तक पहुंच जाएं जो

राष्ट्रीय आधार पर हानिकारक बन जाएं आज भी दुनिया में ऐसे लोगों के लिए बड़ी सख़्त सज़ा होती है जो किसी मुल्क में रहते हुए किसी दुश्मन के लिए जासूसी का काम करें विशेष रूप से फौजी सूचनाएं दुश्मन को देना बहुत बड़ा जुर्म माना जाता है।

(21) ''उनसे से लड़ो यहाँ तक कि वे ज़लील (अपमानित) होकर अपने हाथों से जिज़्या (कर) देने लगें।''

(सूरत नं. 9 आयत नं. 29)

मेरे विचार में श्रीमान जय भगवान गोयल जी आप शब्द जिज़्या (कर) से कुरआन पर ऐतराज़ करना चाहते हैं। इसका अनुवाद आपने (ग़ैर मुस्लिमों से टैक्स) किया है हालांकि यह अनुवाद भी गलत है और आप इस हकीकत से बिल्कुल अनजान हैं आपने शायद यूरोपियन इस्लाम दुश्मन किसी शख़्स की किताब देख ली है और आपने भी वही बात कहनी शुरू कर दी जो वह लोग कहते कहते दुनिया से चले गए। अब मैं आपको बताता हूं आप इसको गौर से देखेः-

किसी भी इस्लामी देश में जो फौज होगी वह मुसलमानों की होगी। जो गैर मुस्लिम वहाँ रहने वाले हैं उनको फौज में भर्ती होना ज़रूरी नहीं है। यह मुस्लिम फौज इस्लामी मुल्क में मुसलमानों की सुरक्षा करती है। मुसलमान फौजी अस्त्र-शस्त्र और फौज की दूसरी आवश्यकताओं के लिए इस्लामी राजकोष (बैतुलमाल) की ज़कात सदका और उश्र आदि से मदद करते हैं, दूसरी तरफ इस्लामी नियम के अनुसार इस्लामी हुकूमत इसकी भी बाध्य है कि जिस तरह वह मुसलमान प्रजा की रक्षा करेगी इसी तरह दूसरे मजहब के मानने वालों की भी करेगी क्योंकि अल्लाह के नबी ने इस्लामी हुकूमत मे गैर-मुस्लिम प्रजा के बारे में जिन 15 चीजों पर बाध्य किया है। उनमें पहली चीज़ यह है किः-

(1) कोई दुश्मन उन पर हमला करेगा तो गैर मुस्लिमों की तरफ से लड़ा जाए और उनकी सुरक्षा की जाए। अब यहाँ से यह सवाल उठता है कि इस्लामी सेना को ताकत के साथ खड़े रहने के लिए

मुसलमान सदक़ा व उशर आदि से मदद कर रहा है और लाभ भी उठा रहा है लेकिन गैर मुस्लिम प्रजा लाभ तो उठा रही है पर सेना को ताकतवर बनाकर उनकी रक्षा करने के जतन नहीं कर रही और ज़कात एक धार्मिक प्रणाली है जो ग़ैर-मुस्लिम प्रजा पर बाध्य नहीं की जा सकती। इस्लाम ने इस उद्देश्य के लिए जो ग़ैरमुस्लिम प्रजा पर लागू किया गया है उसको ''जिज़्या'' का नाम दिया है। यही वजह कि यदि इस्लामी हकूमत किसी समय अपनी ग़ैरमुस्लिम प्रजा की सुरक्षा नहीं कर पाएगी तो वह जिज़्या लेने का हक़ भी नहीं रखेगी और न उसको ग़ैर-मुस्लिम प्रजा से कर लेने का हक़ होगा।

हज़रत अबू उबैदा रजि0 अं0 ने हज़रत उमर रजि0 अं0 के ज़माने ख़िलाफत में जब शाम को फतह कर लिया तो ''हरक़ल'' ने बहुत बड़ी फौज मुसलमानों के मुकाबले के लिए तैयार की। मुसलमानों ने अपनी सारी ताकत इसके मुकाबले पर झोंक दी और ''शाम'' में जो ग़ैर-मुस्लिम जिज़्या देते थे उनकी सुरक्षा उनके दुश्मनों से मुश्किल हो गई तो उन्होंने अपने सारे गवर्नरों को आदेश दिया कि जहाँ-जहाँ जिस-जिस से जिज़्या लिया गया उन सबको यह कहकर वापस कर दो कि हमने जिज़्या इस शर्त पर लिया था कि हम तुम्हारी दुश्मन से रक्षा करेंगे, लेकिन मौजूदा हालात में शर्त पूरी नहीं कर सकते इसलिए हम उसको वापस करते हैं। इस पर ईसाइयों ने ईश्वर से दिल से दुआ की अल्लाह तुम्हारी हुकूमत बरकरार रखें, अगर तुम्हारी जगह ''रूमी'' लोग होते तो माल वापस करना तो दूर की बात है जो कुछ हमारे पास था वह भी लूट लेते।

इसी तरह अगर इस्लामी मुल्क में गैरमुस्लिम प्रजा अपनी इच्छा से इस्लामी सेना में सम्मलित हो जाए तो उनसे भी जिज़्या नहीं लिया जाएगा। अतः हज़रत उस्मान रजि. अन्हु के शासन में जब उनकी सेना के सरदार ''हबीब इब्न मुसलमा '' ने ''जुराजमा'' ईसाई कौम को विजयी किया तो उन लोगों ने आवश्यकता के समय सेना में शामिल होकर दुश्मन से लड़ना स्वयं पसन्द किया इसी कारण वह पूरी कौम बावजूद यह कि गैर-मुस्लिम थी जिज़्या कर से मुक्त रही डेढ़ दो सौ

साल के बाद ''ख़लीफा वासिक बिल्लाह'' के समय में उनके गर्वनर ने उन लोगो पर जिज़्या लगा दिया तो ''जराजमा'' लोगो ने बादशाह के सामने अपने इतिहास को प्रस्तुत किया अतः उनको जिज़्या कर से मुक्त कर दिया गया।

मैने श्रीमान गोयल जिज़्या (कर) के बारे में इस्लाम का एक कानून और इस के आधार पर ''हज़रत उमर रजि.अं.'' एवं ''हज़रत उस्मान रजि.अं.'' के शासनकाल के इतिहास के बारे इसलिए बताया ताकि आप सच्चाई तक पहुँच जाएं। अल्लाह करे, आप अपने दृष्टिकोण से इस इतिहास और सच को पढ़कर पीछे हट जाएं।

आप यह समझते हैं कि इस्लाम बलपूर्वक फैलाया गया है लेकिन यह ग़लत है अल्लाह के रसूल की ग़ैर-मुस्लिम प्रजा पर यह बेमिसाल (अनुपम कृपा) और उनको दिए हुए यह अधिकार इस्लाम को स्वीकार करने का कारण बने हैं। इसी कारण वश इस्लाम जंगल की आग की तरह फैल गया।

(22) ''फिर हमने उनके बीच क़यामत के दिन तक के लिए अदावत व दुश्मनी की आग भड़का दी और अल्लाह जल्द ही उन्हे बता देगा जो कुछ वह करते रहे हैं।''

(सूरतः 5 आयत, 14)

यहाँ भी आपने वही किया जो आप इससे पहले करते चले आएं है। पूरी आयत को छोड़कर उसके आखरी हिस्से को उठाया ताकि यह मालूम न हो सके कि जिस सज़ा और अज़ाब का वर्णन है उसका कारण क्या था। पूरी आयत इस प्रकार है, ''और जो लोग कहते हैं कि हम ईसाई हैं, हमने उनसे उनका प्रण लिया था, फिर भूल गए, लाभ उठाना उस उददेश्य से, जो उनको किया गया था, फिर हमने लगा दी आपस में उनके दुश्मनी और ईर्ष्या क़यामत के दिन तक और जता देगा उनको अल्लाह जो कुछ करते थे।''

अल्लाह ने अपने रसूलो की ज़बानी क़ौमों से एक अल्लाह की

इबादत का प्रण लिया था जिसको विशेष रूप से सूरत नं. 7 की आयत नं. 59, 65, 73, 85 में वर्णन किया गया है। जिसने इस नियम को बाकी रखा उसके लिए स्वर्ग है जिसने इसको तोड़कर एकेश्वरवादिता की जगह अनेकेश्वरवादिता को अपनाया उसके लिए नर्क है (दुनिया में रसूल का कहना न मानने की किस को क्या सज़ा मिली) इसको अगर देखना है तो सूरत नं. 26 और आयत नं. 120, 139, 158, 172, 173, 189 को देखिए। व्याख्या पढ़िये इसका विस्तार मालूम होगा।

"हज़रत ईसा अ." ने भी बनू-इसराईल को पहले रसूलो की तरह ऐकेश्वरवादिता का आदेश दिया था, सूरत नं. 15 आयत नं. 72 देखिए और मसीह ने कहा कि एक अल्लाह को मानो जो किसी को अल्लाह का शरीक बनाएगा तो अल्लाह उस पर जन्नत हराम कर देगा और उसका ठिकाना आग है।"

लेकिन बनू-इस्राईल ने उनकी बात नहीं मानी तो बनू इस्राईल को एक और सज़ा यह भी दी गई कि ईसाइयों के ख़ास तौर पर तीन फिरक़े कर दिए गए "नस्तूरिया" (उनकी मान्यता यह थी कि हज़रत ईसा अल्लाह के बेटे है) "याकूबिया" (उनकी मान्यता यह थी कि हज़रत मसीह अल्लाह के साथ जुड़े हैं) "मलकाया" (उनकी मान्यता यह थी कि हज़रत ईसा मसीह तीन ख़ुदाओ में से एक हैं) यह तीन मुख्य रूप से फिरक़े थे और तीनों एक दूसरे को काफिर कहते थे। कुरआन की यह आयत बता रही है कि यह सब लोग एकेश्वरवादिता को छोड़ बैठे इसलिए इस कुफ्रिया आस्था की बुनियाद पर वह नर्क के भागीदार होंगे। कयामत के दिन कोई उनका मददगार नहीं होगा।

(23) "एक के बाद एक यह तीन आयते हैं, अर्थात 88, 89, 90, जब तक इन तीनों आयतों का अनुवाद नहीं होगा कुछ समझ में नहीं आएगा।

(1) आयत नंबर 88 का अनुवाद यह है "तुमको क्या हुआ कि उन मुनाफिको के बारे में तुम दो गिरोह हो रहे हो हालांकि अल्लाह ने

उनको उल्टा फेर दिया उनके बुरे कामों के कारण क्या तुम इरादा रखते हो कि ऐसे लोगों को हिदायत करो जिनको अल्लाह ने गुमराही में डाल रखा है और अल्लाह जिसको गुमराही में डाल दें उसके लिए कोई रास्ता न पाओगे।''

(2) आयत नंबर 89, ''वह चाहते हैं कि जिस तरह वह काफिर (गैर-मुस्लिम) हुए हैं इसी तरह से तुम भी काफिर हो जाओ फिर तुम एक जैसे हो जाओ तो उनमें से किसी को अपना साथी न बनाना, जब तक वह अल्लाह की राह में हिजरत न करें, और अगर वह इससे फिर जाएं तो उन्हें जहाँ कहीं पाओ पकड़ो और उनका कत्ल करो और उनमें से किसी को साथी और मददगार न बनाओ।''

(3) आयत नंबर 90 ''मगर जो लोग ऐसे हैं कि जो मिलते हैं ऐसे लोगों से कि तुम्हारे और उनके दरमियान सुलह है या स्वयं तुम्हारे पास इस हालत से आएं कि उनके दिल तुम्हारे साथ और अपनी कौम के साथ भी लड़ने से तंग हो, अगर अल्लाह चाहता तो उनको तुम पर मुसल्लत कर देता फिर वह तुम से लड़ने लगते फिर अगर वह (सुलह करके) तुमसे किनारा कश रहे यानिं तुमसे न लड़े और तुम पर सुलाह पेश करें तो अल्लाह ने (संधि की दशा) में तुम को उनपर कत्ल या कैद वगैरह की कोई राह नहीं दी।'' (सूरत नं. 4 आयत नं. 88, 89, 90)

पहले कई जगह जो आप कर चुके हैं यहां भी आपने यही किया बीच से आपने एक आयत नंबर 89 को उठाया लेकिन आयत नंबर 88 और 90 को छोड़ दिया हालांकि दूसरी दोनों आयतों को मिलाय बगैर इस आयत के अर्थ साफ तौर पर मालूम नहीं होंगे। सूरत नंबर 3 आयत नंबर 72 देखिए तो पता चलता है इस्लाम के खिलाफ कुछ यहूदी और ईसाई लोगों का यह भी एक प्रोग्राम था कि पहले ईमान का दावा करके मुसलमानों में दाखिल हो जाओ और कुछ दिन मुसलमानों में रहकर फिर अपने धर्म में वापस आ जाओ ताकि यह प्रोपेगंडा करना आसान हो जाए कि हमने मुसलमान बनकर देख लिया दूर के ढोल सुहाने होते हैं अंदर कोई जान नहीं है।

उनको देख सुनकर मक्का के कुछ लोग भी इसी तरह का काम कर बैठे पहले मुसलमान होने का दावा किया। कुछ दिन मदीना में मुसलमानों के साथ रहे और सामान लाने के बहाने मक्का जाने की आज्ञा मांगी और फिर वापस नहीं आए। कुछ मुसलमान उन लोगों को मुसलमान मान रहे थे और कुछ ग़ैरमुसलमान। पहली आयत नंबर 88 में इसका वर्णन है फिर दूसरी आयत नंबर 89 में उन लोगों के वास्तविक उद्देश्य पर से पर्दा उठा दिया कि उन लोगों का यह काम तुम सबको गैर-मुस्लिम बनाने और हमारे देश की वर्तमान परस्थितियों के अनुसार तुम्हारे घर वापसी के लिए किया गया है तो इनसे दोस्ती का संबंध भी न रखो और होशियार रहो इसका ख़तरा है कि कहीं दोस्ती होने पर उनका रंग तुम्हारे ऊपर भी न चढ़ जाए लेकिन तौबा का दरवाज़ा खुला है अगर वे तौबा करके आ जाएं तो उनका अब तक का पाप माफ हो सकता है नहीं तो तुम्हारे ख़िलाफ ऐसा षडयंत्र करने वालों को जहाँ पाओ मारो।

अगली आयत नंबर 90 में कहा जा रहा है "जहाँ पाओ मारो" की सज़ा धर्म के आधार पर नहीं है बल्कि आयत नंबर 88 में उन लोगों ने जो षडयंत्र रचा था उसकी बुनियाद पर है नहीं तो जो गैर मुस्लिम सुलाह शान्ति के साथ मुसलमानों के साथ रहें तो मुसलमान इस्लाम का दरवाज़ा उनके लिए खुला हुआ है इस्लाम को उनके धर्म से कुछ लेना-देना नहीं। अतः आयत नंबर 90 इसी को स्पष्ट कर रही है।

आयत नंबर 90 वास्तव में इस्लाम की भाई चारगी और ग़ैर-मुस्लिमों के साथ रहन-सहन की सही तस्वीर पेश करती है और इस्लाम के खिलाफ गलत प्रोपेगंडे को भी कंडम करती है इसलिए आपने बीच से जो एक आयत नंबर 89 उठाई है यह गलत है। आयत नंबर 88 और आयत नंबर 90 को देखिए यह दोनों आयतें इसी आपकी पेश की हुई आयत नंबर 89 से संबंध रखती हैं, जब तक इन आयतों को मिलाया नहीं जाएगा बात साफ नहीं हो सकेगी।

(24) "उन (काफिरों) ग़ैर-मुस्लिमों से लड़ो अल्लाह तुम्हारे हाथों उन्हें सजा देगा और उन्हें रुसवा करेगा और उनके मुक़ाबले में तुम्हारी मदद करेगा और ईमान वाले लोगों के दिल ठंडे करेगा।"

(सूरत नंबर 9 आयत नंबर 14)

श्रीमान गोयल जी यहाँ भी आप ने वही किया जो पहले से करते चले आए हैं क्योंकि इस आयत में कहीं यह नहीं आया कि काफिरों से लड़ो इसमें तो सिर्फ यह है कि उनसे लड़ो जिसका मतलब यह है कि उन पापियों से लड़ो जिनका वर्णन इससे पहली आयत में आया है और इससे पहली आयत में यह भी आया है कि उनके पाप क्या हैं जिसकी सजा का वर्णन इस आयत नंबर 14 में आया है आपने अपनी तरफ से अनुवाद में काफिरों की अधिकता कर दी ताकि आप सारे गैर मुस्लिमों के साथ लड़ाई के आदेश का आरोप अकारण इस्लाम की तरफ लगा दें जबकि कोई आसमानी मज़हब अल्लाह के बंदों पर अत्याचार की शिक्षा नहीं दे सकता। अब आप गोयल जी आयत नंबर 13 को पढ़िए इसका अनुवाद है "तुम ऐसी कौम से क्यों नहीं लड़ते जो अपने वादे को तोड़े और इस फिक्र में रहें कि रसुलुल्लाह को निकाल दें और पहले उन्होंने छेड़छाड़ की तुमसे, क्या उनसे डरते हो? तो तुमको अल्लाह का डर ज़्यादा चाहिए अगर तुम इमान रखते हो" इस आयत में उनके तीन बड़े-बड़े दोष बता कर कहते हैं कि, ऐसे पापियों से लड़ो, अल्लाह तुम्हारे हाथों उनको यातना का मज़ा चखाएगा। क्योंकि अल्लाह का रसूल अल्लाह का सबसे प्रिय होता है इसलिए अपने प्रिय के साथ कोई षडयंत्र रचा जाए यह अल्लाह को पसंद नहीं है अतः दुनिया में मुसलमानों के हाथ उनको सज़ा दी गई और उनके शासन को पलट दिया गया।

श्रीमान गोयल जी, यह मैंने बहुत संक्षिप्त जवाब लिखे हैं और इस अंदाज़ में लिखे हैं जिसमें कोई बारीकी नहीं है यदि आप उपरोक्त वार्णित सभी आयतों को 1, 2 आयत पहले से पढ़ेंगे और समझने की

कोशिश करेंगे तो बात समझ में आ जाएगी कठिनाई यह है कि जिस प्रकार दुनिया के लोग ज्ञान न होने के कारण इस्लाम का विरोध करते हैं इसी प्रकार आप भी अरबी भाषा का कुछ भी ज्ञान न होते हुए भी विरोध कर रहे हैं। हमारा मानना यह है कि यदि आप हर जगह उपरोक्त विषय पर विचार कर लेते तो आपको कोई विरोध न होता।

आपने अपने काग़जात के साथ वसीम रिज़वी के अंतर्गत जो उन्होंने कोर्ट में पेश किए थे ताकि उन आयतों को कुरआन से निकाल दिया जाए, भेजे हैं कोर्ट ने उनके बारे में क्या फैसला किया वह तो दुनिया के सामने हैं लेकिन खुद उनकी जमात ने उनको बागी बता दिया है और शिया समुदाय, उलेमा और ज्ञानी लोगों ने रिज़वी के पास ज्ञान न होने की वजह से उनको शिया धर्म से निकाल दिया है। अब उन आपत्तियों को देखते हुए मैं भी उनको ज्ञान से बिलकुल निराश समझता हूँ और मैं समझता हूँ कि कोर्ट के दोनों आदेश सौ प्रतिशत सही हैं, मुझे अफसोस है आपने भी कुरआने मुबारक के विरोध के लिए किसी का सहारा लिया तो किसका लिया, और दामन पकड़ा तो किसका पकड़ा ईश्वर मुझे और आप सबको सीधा मार्ग दिखाए और अपनी कृपा बनाए रखे। आमीन।

❖●❖

جمعية علماء الهند

JAMIAT ULMA-I-HIND

1, BAHADUR SHAH ZAFAR MARG, NEW DELHI-110002
Phone : 011-23766599, 23738258 E-mail: juh.org2010@gmail.com